समर्पणः

जिनका जीवन क्षुब्ध कि जैसे–
सागर में हिल्लोल उठे!
डोल रहा हो अन्तर मानो–
कल–कल ध्वनि कल्लोल उठे!!

कठिन विषमता की ज्वाला में–
करते हैं जो आह सदा!
तिमिर मिटाने की खातिर जो–
ढूँढ रहे हैं राह सदा!!

भाव–भक्ति सब वहीं समर्पित–
वे ही अंगीकार करें!
काव्य–सुमन यह, 'सोमवल्लरी'–
प्रस्तुत है स्वीकार करें!!

माणकचन्द रामपुरिया

आत्माभिव्यक्ति

मानव मन सर्वतोभावेन विकासोन्मुख रहा है। किन सोपानों पर चढकर उसे कब साफल्य-सूर्य के दर्शन हुए, कहा नहीं जा सकता। किन्तु उसका प्रयास अनवरत प्रवहमान है। इन्हीं प्रयासों की एक कडी के रूप में सोमवल्लरी महाकाव्य का प्रणयन सुसाध्य हो सका है।

वाग्देवी-वागीशा-ज्ञान-विधात्री सरस्वती पर हिन्दी में कोई पृथक पुस्तक दृष्टिगोचर नहीं होती। स्फुट रूप में स्थान-स्थान पर वीणा-पाणी के तारों की झंकार अवश्य सुनाई पडी है। फलत· मन में विचार आया कि क्यों नहीं, इन बिखरे तारों को एक स्थान पर पिरोकर इस महाकाव्य की एक काव्याञ्जलि माँ ब्रह्माणी के श्री चरणों में अर्पित की जाय।

'सोमवल्लरी' कैसी बन पडी, यह तो पाठक ही जानें। अपनी ओर से तो मैं यही कह सकता हूँ कि इस भक्ति-काव्य में माँ सरस्वती के तेजोदीप्त चरित्र की झाँकी स्पष्ट हुई है।

भारतीय धर्म-धारणा की दृष्टि रही है कि सभी शक्तियाँ एक हैं। प्रस्तुत कार्यविधान के दर्शन से उनको भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया गया है। मूलतः महाशक्तियाँ तीन मानी गयी है- महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। गुणों की भी गणना तीन है तम, रज तथा सत्। भारतीय दर्शन के इसी चित्र-पट पर एक स्वरूपा महासरस्वती का अवतरण स्तुत्य है।

'सोमवल्लरी' मे महासरस्वती के उसी एक रूप की उपासना है। मुझे विश्वास है, पाठकों के मन को शाश्वत आनन्द प्रदान करने के साथ-ही-साथ उन्नयोन्मुख विकास पथ पर अग्रसारित करने में यह महाकाव्य निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा। भारतीय मनीषा की दृष्टि से आत्मोन्नयन के लक्ष्य की ओर संकेतित करना सारस्वत प्रयास है, और इस प्रणीत वन्दना का अभीष्ट परिलक्ष्य है।

सरस्वती कंठाभरण साहित्य मनीषी परम आदरणीय डॉ श्री नगेन्द्र जी ने शुभाशंसा देकर पुस्तक के महत्व को द्विगुणित कर दिया है इसके लिए उनका आभारी हूँ और जिन बन्धुओं ने पुस्तक के त्वरित प्रकाशन में जो भी सहयोग दिया है उन्हें धन्यवाद।

'सरस्वती श्रुति महती न हीयताम्'

माणकचन्द रामपुरिया

शुभाशंसा

साहित्य एव कला की अधिष्ठात्री वाग्देवी सामान्यत गीत-प्रगीत काव्य का ही विषय रही हैं। प्रस्तुत काव्य में कवि ने काली तथा लक्ष्मी के साथ एक रूप करते हुए उनके व्यक्तित्व में महाकाव्योचित शेष दो गुणों- शौर्य एव एश्वर्य का समावेश कर दिया है और इस प्रकार वाग्देवी पर पहली बार महाकाव्य रचने का साहसिक प्रयास किया है।

विषय-वस्तु में श्रेय और प्रेम का सुन्दर समन्वय है। कवि का भाषा और छन्द पर सम्यक् अधिकार है जिसके कारण काव्य सर्वथा सुपाठ्य बन गया है।

मैं कवि के उज्जवलतर भविष्य की कामना करता हू।

134, वैशाली, (प्रीतमपुरा), डॉ. नगेन्द्र
दिल्ली-34 28.5.1993

प्रथम

जय-जय वीणा-पाणी माता-
बुद्धि-विशारद ज्ञान-विधाता;
जडता का तम हरने वाली-
ज्योति भुवन में भरने वाली।

जय-जय किरण विभा की भू पर-
उद्भासित सद् ज्योति निरंतर,
तुम हो जहाँ वहाँ पर प्रतिक्षण-
आलोकित रहता है कण-कण।

मूक सृष्टि वाचाल तुम्हीं से-
मोहित है दिक्-काल तुम्हीं से;
पाप-पंक का लेश नहीं है-
तुम हो, फिर कुछ क्लेश नहीं है।

जब भी तम का जोर बढा है-
द्वेश-घृणा का नशा चढा है,
कृपा-कटाक्ष तुम्हारा सत्वर-
शमित हुआ उत्पात भयंकर।

पैशाचिक बल सदा उतर कर-
करता देव-पराक्रम जर्जर;
भुवन-प्रताडक राक्षस-दल का-
पार न मिलता दानव-बल का।

लगता सृष्टि-नियम मिट जाता-
केवल सर्वनाहा इठलाता;
कहीं न ज्योति दिखाई पडती-
तिमिर-वृत्ति ही कीडा करती।

ऐसे मे भी तुम ही केवल–
कर जाती हो पावन भूतल;
तम का जोर मिटा जाती हो–
विभुता अपनी फैलाती हो।

दानव का बल मिट जाता है–
दिग–दिगन्त तक मुस्काता है,
नयी प्रेरणा जग को मिलती–
जन जन मानस कलिका खिलती।

आज पुनः तम घिरा गहन है,
कण–कण में भीषण क्रन्दन हैं,
तम–ही–तम सब ओर भरा है–
अपनो से भी मनुज डरा है।

हिंसा–द्वेष–घृणा का आश्रय–
ले कर करता नर श्रम अपव्यय,
कण–कण में चीत्कार भरा है–
ज्ञान मनुज का अधकचरा है।

ऐसे में बस एक तुम्हीं से–
होगा विमल विवेक तुम्हीं से;
नयी दृष्टि दो, सृष्टि जगेगी–
किरण ज्ञान की पुन. उगेगी।

पुण्य-धरित्री धरा बनेगी-
सात्विकता फिर उद्‌भव लेगी;
दया करो हे शक्ति-दायिनी-
जड-मन-मानस भक्ति-दायिनी।

ज्ञान तुम्हारे-मुख मण्डल का-
ह्रास करेगा दानव बल का;
अधरों की मुस्कान तुम्हारी-
काटेगी जग की अँधियारी।

ज्ञान- वती श्री कृपा करो अब-
तम में जगमग ज्याति भरो अब,
पीडित है जग मग दया दिखाओ-
ज्ञानामृत भू पर बरसाओ।

मोह मिटे जन-जन के मन का-
कटे भाव-नैराश्य भुवन का;
नया ह्रास-उल्लास जगाओ-
जीवन में विश्वास जगाओ।

अमर बनेगी सृष्टि पुरातन-
जग जायेगा धर्म-सनातन,
तभी विषमता मिट पाएगी-
नयी विभा भू पर आएगी।

असर–बंजर तक सरसेगा–
घृणा–द्वेष का भाव मिटेगा,
समता की नव किरण खिलेगी–
सिद्धि ज्ञान नित धरती लेगी।

दया करो हे देवि चिरतन–
याचक है भूतल का जन–जन;
जहाँ–जहाँ दुख–दैन्य भरा है–
पाप–पंक मे वसुन्धरा है।

वहाँ–वहाँ पर तेरी करूणा–
बरसे बनकर शीतल वरूणा,
दग्ध–विदग्ध धरा पर सत्वर–
फैले अमृत ज्योति विभाकर।

हंस–वाहिनी दया दिखाओ–
भू को निर्मल सुखद बनाओ,
बहुत हुआ, जग तडप रहा है–
जाने कितना लहू बहा है।

इसे शान्त बस तुम्हीं करोगी–
शीतल कूल–किनारा दोगी;
ध्यान तुम्ही पर लगा हुआ है
भाव मुक्ति का जगा हुआ है।

जय-जय वीणा-पाणी माता-
एक तुम्हीं हो ज्ञान-विधाता।
दया करो माँ हम हों निर्भय-
महिमा सदा तुम्हारी अक्षय।

द्वितीय

सभी देवता और देवियों–

का करता हूँ वन्दन;

एक रूप पर सदा समर्पित–

मन का पूजन अर्चन।

सभी शक्तियाँ एक, भले ही
नाम अनेक पडे हैं,
मन मँदरी है एक, नगीने
जहाँ विभिन्न जडे हैं।

कोई दुर्गा, कोई काली-
लक्ष्मी का गुण गाता,
कोई सरस्वती कह करके
अपना शीश नवाता।

कोई पार्वती-सती-तारा-
कोई सीता कहता,
कोई धूमावती-षोडसी-
कमला भजता रहता।

कोई बगलामुखी-भैरवी-
छिन्न मस्तिका रटता,
कहते कोई मातंगी से-
पाप हृद्वय का कटता।

कोई राधा जगत-धातृ या-
भवनेश्वरी बताता,
कोई वैष्णव देवी जय-जय-
कह कर फूल चढाता;

नाम रूप है एक,जहाँ पर-
केन्द्र हृदय का बनता,
व्यापक नील-निरभ्र गगन मे-
एक चँदोवा तनता,

भटक रहे मन के पंछी को-
एक केन्द्र मिल जाता,
एक बिन्दु भी लक्ष्य सिन्धु का-
आसानी से पाता।

मन के भटक रहे तारों की-
यही डोर है बन्धन;
नाम-रूप ही बन जाता है
जीवन का आकर्षण

प्रतिपल-प्रतिक्षण इच्छाओं का-
वेग उभरता रहता,
वीतराग के शिखर-शिखर से-
प्राण उतरता रहता।

प्राण-विहग को एक श्रृंग पर -
रखना कितना दुष्कर;
सुलभ उसे है, जिसने मन की-
गति को बाँधा कसकर।

प्राण अन्यथा सदा-सर्वदा-
नित स्वच्छन्द विचरता,
द्रश्य-लोक के राग-रंग पर
प्रतिपल भटका करता।

यह तो बँधता उसी ततु से-
मन जिसको धर लेता,
नाम रूप से ज्ञेय तत्व को-
मन अपना कर लेता।

परम शक्ति के इसी वरण से-
शक्ति हृदय को मिलती,
यही लक्ष्य है जहाँ पहुँच कर-
मन की कलिका खिलती।

 ❖ ❖

तत्व एक है, वही अनेकों-
रूपों में है ढलता;
जैसे जल हिम बनकर जमता-
पानी बनकर गलता।

शक्ति एक है, वही अहर्निश-
करती जग-संचालन;
जग में बढ़ते पाप-पंक का-
करती है प्रक्षालन।

उसी तत्व का पूजन–अर्चन–
प्राण निरंतर करता,
उसी तत्व के चरण कमल पर–
अपना मस्तक धरता।

प्राण विकल है उसी तत्व का–
पाए निर्मल दर्शन,
करे वही अपने पन के क्षण–
क्षण का मधुर समर्पण।

❖ ❖ ❖

शक्ति मुझे दो शक्ति दायिनी–
करता प्रतिपल वन्दन,
रहे निवेदित तेरे प्रतिनित –
भाव–भक्ति–अभिनन्दन।

सोमवल्लरी तुम्हीं कि जिससे–
जीव अमरता पाता,
मृत्युमुखी मानव के मन में–
सुख–अमर्त्य लहराता।

जय–जय हंस–वाहिनी। तेरी–
महिमा कौन बताए;
जहाँ नहीं तुम वहीं दु ख के–
रहते क्रन्दन छाए।

दया करो हे दयामयी माँ
भू का ताप शमन हो;
दानव-बल के बढे प्राक्रम-
का अब देवि। दमन हो।

जय-जय माते वाग्विधात्री-
नूतन महिमा वाली;
एक किरण दो ज्ञान विभा की-
कटे सकल अँधियाली ।

तृतीय

जय हे माते, तुम्हीं सबों की
इच्छा पूरी करती;
एक रूप तुम किन्तु अनेकों
रूप धरा पर धरती।

जिसेन जैसा चाहा, तुम तो
रूप वही धर लेती;
सदा अकारण कृपा तुम्हारी
शान्ति सभी को देती।

देवि! महा विद्याओं मे है
पहली छवी माँ काली,
यही कीर्ति है देव-गणों के
कष्ट मिटाने वाली ।

हिमगिरी के ही उच्च शिखर पर-
था मतंग ऋषि आश्रम,
यहीं चलाया देव-गणों ने-
पूजन-अर्चन का कम।

तुम मतग-वनिता बन आई-
श्याम रंग मनहारी,
तेज-प्रदीपा, काजल-कृष्णा
जन-मन के सुखभारी।

देव महामाया के कीर्त्तन
पूजन में थे तत्पर;
सहसा काली प्रकट हुई तब-
बोले सब अकुलाकर।

बोलो माता कैसे तेरी-
कृपा सभी जन पाएँ,
शक्ति हमे दो, हम सब अपना-
निर्मल न्यास बचाएँ।

काली बोली-तुम सब जो भी-
मेरा पूजन करते,
वे हैं निर्भय सदा सुकर्मी-
नहीं किसी से डरते।

प्रतिपल सब भावों में मैं ही-
कृपा सभी पर करती,
तम के शापित शिला खण्ड पर-
ज्योति-चरण नित धरती।

मेरा काली रूप सदा ही-
भूतल का तम हरता,
सब पैशाचिक तत्त्व इसी से
रहता डरता डरता।

मेरी है आशीष इसी से-
शक्ति विमल तुम पाओ;
इसी रूप की सात्विकता को-
अपना सदा बनाओ।

❖ ❖ ❖

विष्णु-प्रिया यह वाक्रमयी श्री
ही काली बन आई,
दानव-बल को नष्ट किया औ
नूतन सृष्टि रचाई।

शुम्भ-निशुम्भ विकट राक्षस थे
भूतल पर उत्पाती,
परम दुष्टता उत्पीडन ही
उनके थे सघाती।

सभी देवताओं ने मिलकर-
देवी को गुहराया,
चाकमती ने रूप कौशिकी
अपना तुरत बनाया।

दुष्टों का सहार हुआ फिर
नयी चेतना आई;
शक्ति आसुरी शमित हुई औ
नूतन महिमा छाई।

जय हे माते, वाङ‍्मयी है
तेरी लीला न्यारी;
तू है कुलिश-कठोर साथ ही
फूलों सी सुकुमारी।

चतुर्थ

सभी एक, पर रूप अलग है-
डाल एक पर, पर भिन्न विहग हैं;
माया का यह खेल निरंतर-
चलता रहता है भूतल पर।

शक्ति वही है सदा अखण्डित-
ज्ञान विधात्री, महिमा मडित;
जब जो चाहा किया वही है-
पावन उससे सदा मही है।

एक बार नारद जी सत्वर-
पहुँचे थे कैलाश शिखर पर;
शकर तन में भस्म रमाएं-
योगाश्रित थे ध्यान लगाए ।

सहसा काली वहीं पधारीं-
फैली भू पर किरणें न्यारी;
दिग दिगन्त हो उठा प्रकाशित-
हुआ प्रवाहित मलय सुवासित।

काली ने नव राग जगाया -
कुछ विचार अन्तर में आया,
पुनः धरा पर गौरी बल कर-
धर लूँ नूतन रूप मनोहर।

किन्तु लाज से सिमट गयी थी-
सहज भावना बडी नयी थी;
अन्तर्ध्यान हुई फिर काली-
शान्ति सभी को देने वाली।

रोष जगा शकर के मन मे-
क्यो आई काली इस क्षण में,
शंकर ने तब नारद जी से-
कहा बताओ पूछ सभी से-

कहाँ गयी है काली इस क्षण-
हुआ कहो क्यों, यह परिवर्तन,
उसका सात्विक रूप अचल है-
मोह वहाँ क्या? सब निर्मल है।

नारद बोले-मेरू शिखर पर-
उतरी है वह ज्याति-प्रखर धर;
जाता हूँ मैं उसे मनाने-
पास आपके तत्क्षण लाने।

काली को लेकर आऊँगा-
यश नारायण का गाऊँगा;
तभी शान्ति आयेगी मन में-
शाप शमित होगा जीवन में।

मन में नव उल्लास जगाए-
युगल अधर पर हास सजाए;
नारद पहँचे मेरू शिखर पर-
बोले सादर शीश नवा कर-

जय जगदम्बे जय मातेश्वर–
जाग गए हैं अवदर शंकर
चलें शीघ्र है शुभ्र आमत्राण
करता हूँ माँ यही निवेदन।

त्रिपुर भैरवी बनकर काली–
गरजी धर कर रूप कराली;
उन्हें देख नारद भी सिहरे–
खडे रोगंट उनके बिखरे।

नारद जी ने शीश नवाया–
कीर्त्तन उनके यश का गाया;
भिक्ति–विनय से गद–गद होकर–
दृग–जल से चरणों को धोकर।

शान्त किया जब क्रोधानल को–
त्रिपुर भैरवी रूप धवल को;
तभी विमल तारा–श्री बनकर
उतरी माँ जगदम्बा भू पर।

नर–कपाल, कैंची औं सरसिज–
कलम लिए थी कर में उद्भिज;
व्याघ्र चर्म से भूषित तन था–
मुण्डमाल से हदय सघन था।

नाश किया हयग्रीव असुर का-
दानव बल की शक्ति प्रचुर का,
यही उग्रतारा फिर बनकर
दयामयी है देवी भास्वर।

विमल महा विद्या का कौशल-
सिद्धि इन्ही में रहती प्रतिपल;
करुणामय माँ अम्बा मनहर-
शक्ति अधिष्ठात्री है भू पर।

दया करो हे दयामयी माँ-
भर दो मुझ में शक्ति नयी माँ,
जिससे जीवन सुखद बनाऊँ-
निशिदिन तेरा कीर्त्तन गाऊँ।

इसी भाव मे हदय लगाए-
नारद अपना शीश नवाए;
सब कुछ बोले शिव से आकर-
तारावती की महिमा गाकर।

शंकर बोले होकर हर्षित -
रहे भक्ति से भव आकर्षित,
तभी मिटेगा ताप भुवन का-
होगा निर्मल मन जन-जन का।

गूँज उठा फिर भूतल अम्बर–
जय जगदम्बे। जय मातेश्वर।

जय वागीशा । ज्ञान विधात्री।
करूणाकर माँ जीवन–दात्री।

पंचम

जय ब्राही, जय भागवती माँ–
तेरी महिमा गाता हूँ;
तेरे भाव भक्ति के रस से–
पावन हृद्वय बनाता हूँ।

अद्भूत चरित तुम्हारा भू पर–
माता सबसे न्यारा है;
भटक रहे प्राणी को केवल–
तेरा सबल सहारा है।

एक सदा तुम, किन्तु भुवन मे–
रूप अनेकों धरती हो;
एक तुम्हीं तो हर प्राणी की–
इच्छा पूरी करती हो।

जो भी जैसे भजता तुमको–
उसी रूप में आती हो;
विमल शारदे। भक्त जनो पर–
कृपा–वारि बरसाती हो।

एक समय जय–विजया के सँग–
दूर चली तूम आई थी;
जाकर मंदाकिनी नदी में
अपनी श्रान्ति मिटाई थी।

शीतल जल से तृप्त हुए तब–
सखियों में उल्लास जगा;
कैसे क्षुधा शान्त हो, मन में
उनके विकल प्रयास जगा।

सखियाँ बोली- देवि तीव्रतर-
हम सब को अब भूख लगी है,
कैसे भला बताएँ हम में-
कैसे ऐसी व्यथा जगी।

कैसे ज्वाला शान्त करें हम-
दिखती कोई वृति नहीं,
मन को मारे मौन रहे हम-
ऐसी रही प्रवृति नहीं।

तभी कराग्र-धार से देवी-
ने निज मस्तक काट लिया-
बहते उष्ण रक्त को उसने
तीन धार मे बाँट दिया।

एक एक धारा से सखियों-
की थी ज्वाला शान्त हुई,
और तीसरी धारा पीकर-
देवी स्वयं प्रशान्त हुई।

नाम तभी से छिन्न मस्तिका-
देवी का था कहलाया;
गुह्य तत्व कर बोध कराने-
वाला सबने बतलाया।

श्वेत कमल आसीन,भक्तिमय-
गुह्य साधना लीक बनी;
परम रहस्य साधना पथ की
अविचल देवि प्रतीक बनीं।

शीश काटकर स्वय बिहँसती-
रहती भव मे लीन सदा;
गुह्य तत्व की ज्ञान प्रबोधक;
साधन में तल्लीन सदा।

जय हे माते छिन्न मस्तिके।
पग पर शीश नवाता हूँ;
तेरे यश गौरव को गा-गा-
शान्ति अलौकिक पाता हूँ।

आज भुवन में दानव बल का-
देखो कितना जोर बढा;
ज्ञान-ज्याति को ठेल किनारें-
तम है चारों ओर बढा।

किरण ज्ञान की फैले माता-
शक्ति तिमिर की नष्ट करो,
तडप रहे हैं भक्त तुम्हारे-
माता भव का कष्ट हरो।

जय-जय माते छिन्न मस्तिके।
सुमन समर्पित करता हूँ,
ग्रहण करो माँ, अपने पन का
सर्बस अर्पित करता हूँ।

षष्ठ

विद्या देवी वाङ्मयी का-
रूप षोडशी जगकर;
करता है कल्याण भुवन का-
होता जीवन भास्वर।

यही रूप है जहाँ विभव की-
सारी विभुता जगती;
इसी रूप में श्री विग्रह की-
धात्री अम्बे, लगती।

उदयाचल पर प्रभा सूर्य की-
जैसी लगती निर्मल ,
सरसिज की पखुडियो पर ज्यो
शबनम करता झलमल।

स्वच्छ निरभ्र गगन में जैसे-
चाँद सलोना हँसता;
दुग्ध चाँदनी का पट जैसे-
कुञ्झ गली में फँसता।

ऐसी ही यह अनुपम शोभा -
पूर्ण रूप से विकसित;
सृष्टि-पटल पर अनायास ही-
होती है उद्भासित ।

पूर्ण कला बोडश से यह जो-
रूप अनूप बना है;
वह मातृत्व रूप तो अम्वे,
लगता बस अपना है।

सबसे प्यारा सबसे न्यारा-
माता रूप तुम्हारा,
थकित-व्यथित को जिससे मिलता-
शीतल कूल किनारा।

मधुर जयोत्स्ना-सी यह देवी
भूतल पर कल्याणी;
करती सब के भाग्य-विभव की-
सब दिन ही अगवानी।

सौम्य रूप और दया-भरित माँ-
ममता का है सागर ,
तृप्त मनुज हो जाता इसकी-
करुणा सम्बल पाकर।

इसकी करुणा मिलने पर कुछ-
और न पाना रहता;
जब तक ममता मिलन सकी है-
मानव का मन दहता।

जिसको धोडशी माता देवी-
अपना निर्भय आश्रय;
उसका तो सौभाग्य निरंतर-
बढ़ता यह है निश्चय।

इसका होकर नरको नरता-
स्वयं प्राप्त हो जाती;
कीर्ति-अमरता उसके पग पर
स्वयं दौडती आती।

जो भी भजता षोडशी माँ को-
मन वाछित फल पाता;
सब अभीष्ट का सुफल उसे ही-
अपना स्वय बनाता।

दया करो माँ शक्ति दायिनी
भव का ताप मिटओ
तडप रहा जीवन धरती का-
शान्ति सुधा बरसाओ।

कठिन विषमता मिटे,दीप-
समता का यहाँ जलाओ;
कन्दन-रोदन थमे धरा पर,
मगल नाद सुनाओ।

जोह रहा भव राह तुम्हारी-
आओ माता आओ;
ज्वाला-जलन सब शान्त करो माँ-
भू को सुखद वनाओ।

सप्तम

भुवनेश्वरी तुम्हारी–
छवि है कितनी न्यारी ,
शिव लीला की रक्षक
तुम हो तिमिरा भक्षक,
आदि–शक्ति हो भू पर–
जय–जय–जय करुणा–कर।

कान्ति अरूण है तेरी-
करो न माते, देरी,
तम का जोर मिटओ-
ज्ञान किरण फैलाओ,
दाह-दुग्ध भूतल का-
बन्धन अन्तस्तल का;

कटे-मिटे दुख सारा-
भव हो सब का प्यारा,
शान्ति भुवन में आए-
सुख सौभाग्य सजाए;
बने धरित्री अनुपम-
गूँजे नूतन सरगम।

भव दुख-हरने वाली-
पोषण करने वाली,
सब की हो तुम माता-
जय-जय ज्ञान विधाता।
कृपा तुम्हारी अविरल-
बरसे भू पर प्रतिपल।

सृष्टि व्यथित है आओ-
अपना इसे बनाओ,
ताप शमित हो भव का-
दानव बल कलरव का:
पुनः बने जग जगमग-

शिव संग तुमने जग कर-
लीला की थी भू पर,
    लास-विलास सजाएँ-
    पुण्य धरा पर लाए;
आज पुन वह अवसर-
आया है मातेश्वर।

शत्रु सत्य के जागे-
पुण्य प्राण हैं भागे;
    हा हा कार भरा है-
    मानव डरा-डरा है,
जन-जन है भय कंपित-
अपनों से भी शंकित।

मन में हास नहीं है-
कुछ उल्लास नहीं है;
    मूक चित्र से सब हैं-
    मृत्युमयी करतब है;
राह सत्य की धुँधली-
घिरी यहाँ है बदली;

कठिन विषमता फैली-
दुनिया लगती मैली;
    सब कुछ मिटा-मिटा है-
    अपने में सिमटा है;
लोभ प्रबल है मन में-
शान्ति नहीं जीवन में;

धुआँ व्याप्त है जग मे-
शूल बिछे पग-पग मे-
चैत्र नहीं मिल पाता-
द्वेष-दम्भ जग जाता
टेर रहा मन आओ-
शान्ति-सुधा बरसाओ।

मिटे विषमता सारी -
फैले विभा तुम्हारी;
जग हो फिर से निर्मल-
मिले ज्याति का सम्बल।
तम विदीर्ण हो भागे-
पाप मनुजता त्यागे।

शुद्ध-प्रबुद्ध धरा हो
जगमग वसुन्धरा हो,
पुण्य बढे जन-जन का
जीवन में प्रतिक्षण का;
भव में विभुता आए-
सुख साैभाग्य वढाए।

दया करो माँ अक्षय-
जय जय जय करुणामय।
हास्य तुम्हारा पाकर-
हँसता सोम-दिवाकर;
विमल चाँदनी आती-
सबको सुखी बनाती।

जय जगदम्बे, आओ-

करुणा-कण बरसाओ।

भूतल सुखद बनाओ-

जन-जन का हरषाओ।

आओ, माते आओ-

अपना हमें बनाओ॥

अष्टम

त्रिपुर भैरवी का स्वर भू पर–
पुण्य पथिक का जीवन सहचर।
बनती है ब्रहमाणी की ही;
भूतल पर छवि त्रिपुर भैरवी।

कहीं राग से हो आकर्षित-
होता मानव स्वयं समर्पित,
मृग-तृष्णा मे रहता विह्वल-
हिरण-चरण-सा प्रतिपल चंचल।

कहीं-कहीं तो रसना छलती-
रस की ऐसी धार मचलती;
कहीं हृदय को गंध सुवासित-
करती रहती मन को प्रमुदित।

और कहीं पर सरस परस का-
रहता कभी न अपने वश का,
यह तन्मात्राओं का जमघट
सजता जिससे मन का पनघट।

इसी जटिलता से तो मानव-
बन न सका भूतल पर अभिनव;
मोह-द्रोह सब बडा कठिन है-
इससे नर का हृदय मलिन है।

इस पर विजय तभी वह पाता-
जब उत्कर्षित मन हो जाता;
मन के पग को सदा बाँधना-
बड़ा कठिन है इसे साधना।

त्रिपुरभैरवी के आराधन-
से ही होता उन्नत जीवन
सभी इन्द्रियाँ वश में होती-
सहज साधना कलमष धोती।

जय हे माते त्रिपुरभैरवी-
गंजित तेरी जय विभुता की,
भू पर सहज दया बरसाओ।
आत्म-तत्व का रूप दिखाओ।

इंद्रिय-निग्रह कर दो क्षण में-
मोद विपुल आए जीवन में;
हम सब हों आनन्द निमज्जित-
पुण्य धरा हो सुख से सज्जित।

आओ माते, राह दिखाओ-
करूणा-कोर तनिक बरसाओ;
त्रिपुरभैरवी जय करूणामय-
कर दो जन मन भव का निर्भय।

नवम

धूम्राच्छादित पार्वती ही–
धूमावति बन आई;
शंकर से संबोधित गिरि पर –
ऐसी ही छवि पाई।

शंकर थे कैलाश शिखर पर–
अपनी धुनि रमाए,
बडा मगन–मन डिम–डिम डमरू
सब को खूब सजाएँ।

गले पडे नागों ने भी तब–
मन से खुशी मनाई;
चन्द्र किरण थी गंगा–जल पर–
मधुऋतु जैसी छाई।

सजा–धजा था सब कुछ वसहा
भी रह–रह इठलाता;
दिशा–दिशा थी सजग कि कोई
वेद–ऋचा था गाता।

ऐसे में ही पार्वती का–
जठरानल जग आया;
शंकर जी को तत्क्षण उसने
सारा हाल बताया ।

कहा कि मुझको भूख लगी है-
क्या पदार्थ मैं खाऊँ?
शान्ति नहीं है, हृदय दहलता
किसको भक्ष्य बनाऊँ?

शंकर थे मौन, शिवा को-
तनिक न कुछ बतलाए,
रहे देखते निर्मिमेष सब-
होठों मे मुस्काए ।

पार्वती ने कई बार फिर
यही प्रश्न दुहराया;
लेकिन शिव से कोई उत्तर
उसे नहीं मिल पाया ।

खीज उठी वह अनायास ही-
अपने से अकुला के;
निगल गई शिव शंकर को ही-
अपना मुँह फैलाके।

किन्तु शिवा के मुह में कैसे-
शंकर जी रह पाते;
निकल पड़े वे धूम्राच्छादित -
अपने ही मुस्काते।

घना धुआँ, अम्बर में फैला-
देवी की छवि धर कर;
वृद्धा अबला, डरावनी सी-
क्षुधा-भार से जर्जर।

शंकर बोले-धूम्र रूप तुम-
धूमावति कहलाओ,
कृश-वदनी तुम जर्जर लेकिन
भू का कष्ट मिटाओ।

धूमावति है धूम्र-स्वरूपा-
भूतल पर अविनाशी;
शक्ति मयी है सिद्धि दायिनी-
संतों की अभिलाषी।

धूमावति है रूप तुम्हारा-
धूमिल, पर तुम निर्मल;
तेरी दृष्टि मात्रा से खिलते-
अन्तर तर के शतदल।

धूमवति । यह धूम्र रूप तो -
केवल वाह्याडम्बर;
अन्तर से तुम करूणामय हो-
अग-जग की मातेश्वर।

तेरी करूणा जिसे प्राप्त है-
उसको फिर क्या पाना ?
तेरा आश्रय है सतों का-
निर्भय ठौर-ठिकाना।

दया करो माँ धूमावति हम-
तेरा वन्दन करते,
तेरा सहज अनुग्रह पाएँ
पूजन-अर्चन करते।

आज विश्व में क्रन्दन रोदन-
हाहाकार भरा है,
दिशा-दिशा में उत्पीडन है
माँ, चीत्कार भरा है।

हिंसा-द्वेष-घृणा-कुत्सा का-
मूर्तित रूप खडा है,
नाश-विनाश यहॉ धरती पर-
अत्याचार बढा है।

तडप रहा जन-जन का अन्तर-
शान्ति नही मिल पाती,
जहाँ देखिए वृति पिशाची-
चलती है इठलाती।

इस जघन्य ज्वाला को माता-
शान्त तुम्हीं कर सकती;
तिमिराच्छन्द हृदय में माते-
नव प्रकाश भर सकती।

दया करो माँ धूमावति तुम -
देवी शक्ति जगा दो,
जय-जय माते। मानव मन में,
ज्ञान विभा फैला दो।

दशम

बगला माँ है सर्व शक्तिमय
सभी सुखों की दात्री,
विमल साधना सिद्धि-प्रदायी-
निर्मल ज्ञान विधात्री।

पीत वस्त्र औं पीतासन पर-
रहती ध्यान लगाए,
विध्न-प्रताडक सब प्रकोप को-
रखती दूर भगाए।

जहाँ-कहीं उत्पात ग्रसित जब
जन जीवन घबडाता;
बगलामुखी देवि के सम्मुख-
अपना शीश नवाता।

द्रवित-दयामय देवी सहसा-
सब की रक्षा करती;
अपने भक्त जनों के सिर पर
स्वस्ति-हाथ नित धरती।

सतयुग की है कथा, उठा था
जब तूफान भयंकर,
सिहर उठे थे उसे देखकर-
स्वयं विष्णु परमेश्वर।

उन्हे लगा तूफान जगत का-
सब विनाश कर देगा;
शक्ति जगत में नहीं कि इसको-
कोई रोक सकेगा।

चिंतित थे सब, शामत-दामत अब-
कैसे क्रूर प्रलय हो?
कौन शक्ति है जिसके बल से-
इस पर आज विजय हो?

इसी सोच में महाविष्णु ने-
अपना ध्यान लगाया;
शक्ति-स्वरूपा मातृ-शक्ति को-
तप से तुरत जगाया।

शक्ति-रूप पिताम्बर-वसना
प्रकट हुई मुस्काई;
सहसा लगा कि भूतल पर ज्यों
परम शान्ति लहराई।

बगला माँ ने क्षण भर मे ही-
वेग विध्वंसक रोका
शान्त हुआ उत्पात चला फिर-
शीतल मलयज झोंका।

महाविष्णु ने कहा कि भू को-
मिली शक्ति कल्याणी;
इस पर आश्रित रह सकते हैं-
भूतल के सब प्राणी।

यहाँ कष्ट उत्पात भयंकर -
दिखे,इन्हे गुहराएँ;
इनके पूजन-अर्चन में नर-
अपना समय बिताएँ।

इससे ही कल्याण भुवन का-
प्रतिपल-प्रतिक्षण होगा;
महाप्रलय-के भी प्रकोप से
रक्षित जीवन होगा।

तब से ही यह बगला माता-
भू पर है सुखदाई;
उसकी हर क्षण रक्षा करती
जिस पर विपदा आई।

आज धरा पर देखो माता-
पुन उपद्रव छाया,
तडप रहे सब, साधु-पुरूष पर-
संकट है गहराया।

दया करो माँ, बने सुहावन -
पावन फिर यह भूतल,
जीवन पथ पर थके भक्त को-
दे दो अपना सम्वल।

टेर रहा है भू का कण कण
दया करो अब माता;
कष्ट निमज्जित भक्त-जनो की
तुम हो भाग्य विधाता।

बगला मुखी तुम्हारी जय हो-
जन-जन की तुम गीता,
दया करो हे भक्ति-दायिनी-
पावन शक्ति-पुनीता।

एकादश

शिव की शक्ति स्वयं मातंगी–
शीश चन्द्रमा प्रभा सुअंगी;
        नेत्र तीन औ रत्न–सिँहासन–
        करती प्रतिपल भव–संचालन;
रूप चतुर्भज शस्त्र सुचेतक–
पाश, खड्ग अंकुश औ खेटक;

सजग भुवन में रहती हरपल-
करती भू का कण-कण उज्ज्वल
घोर विपिन पर विपदा ल
दावानल ज्यों भस्म बना
वैसे ही दानव-बल ऊपर-
चलता माँ का घात निरतर।

कोई दुष्ट न बच पाता है-
माँ को क्रोध विकट आता है;
नील कमल तन-शोभाशाली-
भक्तों की करती रखवाली।
सब अभीष्ट फल वे ही पाते
आकर जो भी शीश नवाते।

माँ के सम्मुख जो आते हैं-
जीवन सुखद बना जाते हैं।
कोई क्लेष न उनको रहत
मन में कोई ज्वाल न दह
जीवन रहता शान्त कमल-सा-
माँ की पावन भक्ति सबल-सा।

कहते सब-गार्हस्थ निरामय-
सबसे ऊँचा दिव्य प्रभामय;
योग-यज्ञऔ सकल तपस्या-
इस आश्रम की नहीं समस्या;
यहाँ सभी तप सध जाता है-
धर्म मनुज जब अपनाता है।

किन्तु सत्य है समय-समय पर-
होते हैं उत्पात भयकर;
लगता मन ही टूट रहा है-
जैसे सब कुछ छुट रहा है;
घना अँधेरा घिर आता है-
कदम कदम मन टकराता है।

स्वयं सबल विश्वास हृदय का-
तिनका बनकर नील निलय का
उड जाता है छोड कुहासा-
शेष न रहती कोई आशा,
मन घबडाता करता क्रन्दन-
हो जाता है व्याकुल जीवन।

उस क्षण देवी मातगी ही-
करती रक्षा माता-सी ही;
संकट का तमतोम हटाकर-
ले चलती हैं सहज जगाकर,
पथ पर निर्भय ला देती हैं-
राह सुखद बतला देती हैं।

जीवन में उल्लास जगाती-
भव को पावन पथ दिखलाती,
जहॉ-जहाँ सकट की काली-
छाया दिखती है मतवाली;
वहाँ-वहाँ पर अपने जन का-
कष्ट मिटाती भव जीवन का।

माया प्रबल जहाँ जगती है-
सृष्टि डूबने ही लगती है,
घोर तमिस्रा भू पर आती -
धू-धू ज्वाला सी धुँधवाती;
कुछ भी शेष न बच पाता है-
मानव दानव बन जाताहै।

उस क्षण माँ का पूजन-अर्चन-
कर के पाता नर नव जीवन ,
मातंगी की प्रबल साधना-
रखना मन में तनिक साध ना।
इसी डोर को धर कर मन में-
पाते जन-जन सुख जीवन में।

जय हे माते, जय मातंगी-
शिव की शक्ति समुज्ज्वल अंगी,
तेरी करूणा के हम याचक -
स्वाति दृष्टि दो हम है चातक।
हर लो मन का सारा सशय-
कर दो माता हम को निर्भय।

द्वादश

महाविष्णु की विमल सहचरी-
कमला माता;
भूतल के जन-जन की पोषक-
रक्षक त्राता।

इनकी महिमा बडी निराली-
फैली भू पर,
इनके यश से गुंजित प्रतिक्षण-
भूतल अम्बर।

अमर महाविधाओं की है-
माता धात्री ;
भक्त-जनों के लिए सदा हैं
ज्ञान-विधात्री।

मानव-दानव देव सभी जन-
इनके आश्रित;
इनमें ही है सब देवों की-
शक्ति समन्वित।

पंगु वही है, जिन्हें न मिलता-
इनका आश्रय;
भक्त-जनों पर इनकी करूणा-
रहती अक्षय।

कमलासन-आसीन सदा ही-
रहती तत्पर;
भव का बन्धन हरने वाली-
जय मातेश्वर।

रूप चतुर्भुज मुख-मण्डल पर-
अरूण प्रभा है,
ज्योतिमती माँ तेरे दृग में -
नई विभा है।

जो भी जैसे जब भजता है-
तुम आ जाती;
अपनी दिव्य दृष्टि से उसका-
कष्ट मिटाती।

मुद्रा तेरी सदा अभय औं-
ध्यान लीन है,
भक्त जनों को सुख देने में-
माँ प्रवीण है।

कृपा-प्रसाद तुम्हारा पाने-
को लालायित;
रहते धरती के सब निर्मल-
प्राणी निश्चित।

जब-जब संकट घिरता, करके
पूजन अर्चन,
सब सौभाग्य विमल यश भू पर -
पाते जन-जन।

आज पुन मानव–मानव में–
द्वेष बढा है,
हिंसा–क्रोध–घृणा का सब पर–
नशा चढा है।

अत्याचार बढा है भू पर–
त्राहि मची है;
लगता किसी मनुज मे नरता–
नहीं बची है।

धू–धू ज्वाला दहक रही है–
भव जलता है;
साधु–पुरुष तो बैठ किनारे–
कर मलता है।

शक्ति जहाँ है, बुद्धि नहीं है–
मन रोता है,
माते तेरी दुनिया में यह–
क्या होता है।

ऐसा कोई गेह न जिसमें–
खुशी–हँसी है;
जन–मन के मन में तो कुत्सा;
घृणा बसी है ।

भ्रष्टाचार बना है भू का–
राग अनोखा;
एक–एक जन देता सबको–
केवल धोखा।

श्रम की किमत कही न मिलती–
मन अकुलाता,
कैसे हो उद्धार भुवन का–
समझ न पाता।

गहन विषमता है कण–कण मे–
शान्ति नहीं है;
दुख के इस दारूण प्रहार से–
विकल मही हैं।

शान्त करो माँ भू की ज्वाला–
समता लाओ;
भटक रहे प्राणी को निर्मल–
पथ दिखलाओ।

बिना तुम्हारे, मरण–पीर का–
अन्त न दिखता,
काल भाल पर चढ कर नर का–
लेखा लिखता।

दया करो माँ, दयामयी तुम-
ताप मिटाओ;
कृपा करो माँ भटके नर को-
राह दिखाओ।

त्रयोदश

सभी महाविद्याओं का है-
एक अतुल विस्तार,
वही किया करती है भू पर-
सब की सार-सँभार ।

एक शक्ति है, किन्तु वही तो-
धरती रूप अनेक ,
जिसकी जैसी इच्छा, उसको-
मिलता वही विवेक।

किरण ज्ञान की जब जगती है-
खिलता नया प्रकाश,
उसी ज्योति में मानव अपना-
रचता है इतिहास।

भेद भाव इन विद्याओं की-
है नीचे की बात,
उर्ध्वमुखी कैवल्य पुरुष को-
क्या सुख-दुख व्याघात।

वहाॅ एक है सृष्टि-सनातन -
वहाॅ न कुछ संवेग;
शान्त-प्रशान्त हृदय में होगा-
कैसे कुछ उद्वेग।

विमल शारदा हंस-वाहिनी-
शक्ति भुवन में एक;
भिन्न-भिन्न रूपों में अपना-
करती खुद अभिषेक।

जब भी कोई भक्त हृदय से-
करता विकल पुकार;
निराकार ही सहज भाव से-
बनता है साकार।

शर्त यही है हृदय बने जब-
संवेदन आधार ;
तभी उतर सकती है उसपर-
मूर्तित एकाकार।

वागीशा ही एक धरा पर-
निर्मल शक्ति अखण्ड,
यही रूप धारण करती है-
कोमल और प्रचण्ड

भिन्न भिन्न रूपों के सम्मुख-
मनुज नवाते शीश;
अपने ही अभिलषित रूप से-
पाते सब आशीष।

जो भी जिसको भजता, करता-
शक्ति उसी से प्राप्त;
किन्तु शारदा शक्ति सभी में-
रहती हरदम व्याप्त।

जैसे मेह गगन से झरता-
बनकर जल की धार ,
और पुन· अम्बर पर चढता -
बनकर मेह अपार।

उसी तरह से निराकार भी-
बनता है साकार,
भिन्न रूप धर कर भी रहता-
सब में एकाकार।

कोई गीत किसी का गाए-
शक्ति एक है गेय;
पूजन-अर्चन उसी शक्ति का
एक मात्र है श्रेय ।

सोमवल्लरी माता तेरी-
महिमा अपरम्पार ,
क्षुद्र मनुज क्या पा सकता है-
इसका कोई पार।

कृपा करो माँ, एक रूप में -
देखें हम एकत्र;
रूप तुम्हारा रहे अखण्डित-
यत्र तत्र सर्वत्र।

चतुर्दश

सिद्ध महविद्याओ की सब-
गाथा मैंने गाई;
एक शक्ति ही लौ बन-कर है-
ज्याति-ज्योति में छाई।

दस-दस रूप हुए पर वे सब-
एक तन्तु के दल है;
पंखुडियों की भिन्न विभा है-
एक किन्तु शतदल हैं।

सभी एक हैं नाम रूप में-
थोडी भिन्न कहानी;
तीन महाविद्याओं में है-
काली-लक्ष्मी-वाणी।

ये तीनों है जगन्नियन्ता-
की ही शक्ति निराली;
दुष्ट-दलन के लिए धरा पर-
उतरीं माता काली।

प्रलय काल के जल में डूबे-
सब साधन थे खोए;
शेष नाग पर योग नींद में-
विष्णु-देव थे सोए।

नाभि-कमल पर ब्रह्माजी थे-
शान्त भाव के आश्रित,
सहसा मधु-कैटम जग आए-
कर्ण-कीट से उत्थित ।

मार डालने को ब्रह्मा को-
उद्यत थे ये दानव,
इसीलिए ये दौड पडे थे-
शक्ति संजोकर अभिनव।

भय-कंपित ब्रह्मा ने सहसा-
मन से करके चिन्तन
प्रभु की विकट योग निद्रा का-
किया हृदय से वन्दन।

देवि, तुम्ही हो सर्जक, पालक-
सृष्टि मिटाने वाली,
तू ही विद्या माया मेघा-
बुद्धि बढाने वाली।

काल-रात्रिओं मोह रात्रि भी-
तू ही है इस भू पर,
जन-जन की रक्षा में प्रतिपल
तू ही रहती तत्पर।

देवि, जगा दो महाविष्णु को-
हम रक्षित हो जाएँ;
देवि, तुम्हारी महिमा जन जन-
बार-बार दुहराएँ।

महाविकट दानव के सम्मुख-
हम निरूपाय खडे है,
और योगनिद्रा में मेरे-
रक्षक विष्णु पडे हैं।

विधि का वन्दन सुनते माया-
रूप-मोहिनी आई;
महाविष्णु के रोम-रोम की-
शक्ति उसी मे पाई।

स्वयं विष्णु भी जाग उठे औं-
देखा भू को नभ को;
विधि की ओर झपटते दोनों
दानव मधु कैटभ को।

महाविष्णु से मधु कैटभ के-
युद्ध हुए थे भीषण,
वर्ष हजारों तक भूतल पर-
चला देव दानव रण।

विष्णु कभी थम जाते, लगता-
मधु-कैटभ चढ जाते,
कभी देव की शक्ति उभरती
दानव-बल घबडाते।

इसी तरह वह युद्ध भयानक-
चलता रहा निरंतर;
काली का तब रूप मोहिनी-
आया सम्मुख सत्वर।

उसने मोहित किया दनुज को-
अपने रूप विमल से;
भ्रमित-बुद्धि हो गए दनुज अब-
माया के कौशल से।

कहा-विष्णु से मध-कैटभ ने -
पास हमारे, आओ;
हम प्रसन्न है तेरे रण से
कोई वर ले जाओ।

माया का ही यह प्रपंच था-
सम्मोहित उस क्षण का;
हुआ अन्त साफल्य रूप में-
दानव के उस रण का।

कहा विष्णु ने वर देकर तुम-
अपनी शक्ति घटाओ;
मेरे ही हाथों तुम दोनों-
दानव मारे जाओ।

कहा– 'तथास्तु' तुरत दानव ने–
जहाँ न तिलभर जल हो,
वहीं हमें मारो, अब तेरी–
इच्छा वहीं सफल हो।

विष्णु देव आस्वस्थ हुए औं–
अपना पाँव पसारा,
अपनी ही जाघों पर धरकर
दोनो को था मारा।

असुरों के संहारन में ही–
काली रहती तत्पर
असुर शक्ति–सधारक होती–
करूणाकर मातेश्वर।

संकट–रूप धरा पर जब ही–
दानव का बल बढता–
जब छाया हिंसा का निर्घिन;
नशा मनुज पर चढता।

करूणाकर माँ काली ही तब–
सबकी रक्षा करतीं;
शुद्ध–प्रबुद्ध हृदय में अविरल–
शक्ति अपरिमित भरती।

दया करो माँ तड़प रहे हैं-
पृथ्वी के नर-नारी,
छिटक रही है दिशा-दिशा से-
हिसा की चिनगारी।

शान्त करो माँ भीषण ज्वाला-
शीतलता बरसाओ;
प्रेम बढे मानव-मानव में-
मंत्र यही बतलाओ।

पंचदश

जयति महालक्ष्मी अब जागो–
तेरा विमल प्रकाश खिले;
तिमिरावृत इस भूमण्डल पर–
तेरी ज्याति सुहास खिले।

साधु-पुरुष पर जब-जब संकट-
आया,तुमने नष्ट किया;
आर्त्त-जनों को मुक्त हस्त से-
तुमने सदा अभिष्ट दिया।

मनन्तर के पूर्व कल्प में-
देव-दनुज संग्राम हुआ;
सौ से अधिक काल तक-
भीषण रण अविराम हुआ।

देव परास्त हुए दनुजों से-
महिषासुर सम्राट बना;
इन्द्र देव को निष्कासित कर-
अपने इन्द्र विराट बना।

सभी देवता घबडाए थे-
कैसे कोई काम बने,
कैसे दनुज स्वर्ग से भागें
इन्द्रलोक सुरधाम बने।

ब्रह्माजी के पास देवता-
होकर बहुत हताश गए;
और पुनः सब विष्णु देव औं
शंकर के भी पास गए।

सुनकर दोनों क्रुद्ध हुए औं-
उनकी भृकुटी चढ आई;
तभी धरा पर देवी प्रकटी
दिव्य रूप में मुस्काई।

विष्णु-देव औं शंकर के तन
का ही तेज पुञ्ज निखरा
रूप असीमित देवि-स्वरूपा
बनकर भू पर था उतरा।

इसे देखकर सभी देवता-
मन में बडे प्रसन्न हुए,
लगा कि जैसे सब संकट के-
अन्त बहुत आसन्न हुए।

देवी को फिर अपना-अपना-
आयुध तुरत प्रदान किया,
महिषासुर के वध का उनको-
देवी ने वरदान दिया।

देवी के फिर अट्टहास से-
सभी दिशाएँ काँप उठी;
क्षण भर में फिर एक लहर-सी-
भू पर अपने आप उठी।

पृथ्वी कॉपी, पर्वत डोले-
सागर में भी ज्वार उठा;
देवी से ही व्याकुल स्वर में-
महिषासुर फिर बोल उठा।

कौन अरी तुम देवी जैसी-
क्षण में क्षार बनाऊँगा;
असुर-राज में आने का मैं-
तुझको मजा चखाऊँगा।

देवी ने हुकार किया औं-
क्षण में उससे जूझ पडी;
तेज दीप्रिमय अशनि-पात-सी-
क्षण-क्षण प्रतिपल बूझ पडी।

बडा भयंकर युद्ध हुआ था-
लेकिन दानव हार गए;
इन्द्रलोक को छोड, अतल में-
करते विकल पुकार गए।

यही महालक्ष्मी की छवि है-
जिससे सब उद्धार हुआ;
त्रस्त- ध्वस्त सब देव गणों का-
मोद-मगन संसार हुआ।

दया करो माँ आज धरा फिर–
रह–रह कर अकुलाती है;
पाप–पंक का जोर बढा है
बुद्धि विमल घबडाती है।

दया महालक्ष्मी की जिस पर–
सब कुछ वह पा जाता है;
वह निर्द्वन्द्व सदा जीवन में–
सुख–सौभाग्य बढाता है।

षोड़श

शुम्भ-निशुम्भ धरा पर अपना-

दानव-रास रचाते थे;

देवों का अधिकार छीनकर -

अपना ग्रास बनाते थे।

दया करो माँ आज धरा
रह-रह कर अकुला।
पाप-पंक का जोर बढा है
बुद्धि विमल घबडाती

दया

वह नि.
सु.

शुम्भ-निशुम्भ असुर के अनुचर-
चण्ड-मुण्ड फिर आते है;
रूप-मोहिनी देख मोह से-
तुरत व्यथित हो जाते हैं।

कहा कि देवी असुर-राज ने-
तुमको तुरत बुलाया है;
देवी, आप के विमल रूप ने-
उनको सहज लुभाया है।

उन्हें वरण कर लें अब चलकर-
उनका है आदेश यहीं,
उनके जैसा आज कहीं भी
भू पर बडा नरेश नहीं।

देवी बोलीं-जाकर कह दो-
दर्प हमारा चूर्ण करे;
हमें हरा कर युद्ध-भूमि में-
परिणय मुझ से तूर्ण करे।

चण्ड-मुण्ड जाकर के भारी-
सेना लेकर आते हैं;
किन्तु युद्ध में देवी से ही-
तत्क्षण मारे जाते हैं।

रक्त-बीज फिर आया रण में
उससे भीषण युद्ध हुआ;
लगा कि जैसे महाकाल ही-
चीख उठा है क्रुद्ध हुआ।

देवी ने तब काली बनकर
रक्त-बीज का लहू पिया;
और तुरत ही उस दानव का,
देवी ने संहार किया।

शुम्भ-निशुम्भ वहाँ फिर आए-
किन्तु वही परिणाम हुआ;
पूरी राक्षस सेना का ही-
पल में काम तमाम हुआ।

देवि कौशिकी सरस्वती ही-
भू संचालन करती है;
ज्ञान-विधात्री ज्ञान-किरण की-
जोत भुवन में भरती है।

दया करो माँ दयामयी, हे
तेज पुञ्ज साकार सदा;
साधु पुरुष के विमल भाव मे-
रहती एकाकार सदा।

आज पुन· जो व्याकुलता है

उसका तुम अब अन्त करो,

जन-जन के मन की पतझड को-

माता मधुर वसन्त करो।

सप्तदश

वाक देवता सरस्वती है-
भाव-विभव अनुरंजित;
इनका ही यश प्रतिपल-प्रतिक्षण-
भूतल पर है [illegible]।

जहाॅ कहीं भी सहज आचरण-
विमल दिखाई पडता;
मंगल ध्वनि औं शंख नाद-स्वर-
जहाॅ सुनाई पडता।

दृश्य-हृदय को हरने वाला-
आॅखे में जब आता;
कोई जब भी सात्विक स्वर में-
गीत सलोना गाता।

वहाॅ-वहाँ माॅ सरस्वती ही-
दृग में आया करतीं;
पावन-भावन बोध जहाॅ है-
माता छाया करतीं।

वाणी का वरदान स्वयं ही-
अपने जन को देती;
वर्तमान क्या? आने वाला-
सब संकट हर लेती।

'श्री' संज्ञा से सदा विभूषित-
सब का करतीं मंगल,
मुग्ध-चाँदनी सी मुस्काकर-
करती धरती शीतल।

जहाँ कहीं भी सुन्दरता है–
वह प्रसाद है माँ का;
वही भुवन–भूषित बनता है–
माँ ने जिसको झाँका।

ब्रह्मा को जब ज्ञान जगा तब–
शब्द ब्रह्मा का फूटा;
'ऐं'' ऐं' ही स्वर था उनके,
अधर कमल से छूटा।

यही मंत्र है बीज सृष्टि का–
उन्नति देने वाला;
यही मंत्र है, मोक्ष मनुज को–
सहज दिलाने वाला।

कोई कहता– यही रूप है–
ब्रह्मा जी की दुहिता;
कोई कहता– सरस्वती है–
ब्रह्मा जी की वनिता।

सत्य यही है, एक रूप है–
बह्मा औं ब्रह्माणी;
इसी तत्व से जीवन पाते–
धरती के सब प्राणी।

धरती जागी जागे भव में-
वेद स्वरूप विधाता;
तब से ही है जगी निरंतर-
यह वागीशा माता।

जहाँ कहीं विज्ञान-ज्ञान के-
खिलते नूतन शतदल;
वहाँ-वहाँ पर वाकमती की
रूनझुन गुंजित पायल।

हंस वाहिनी ज्ञान शिरोमणि-
नव विवेक देती है,
नीर-क्षीर से कष्ट मनुज का-
अपने पर लेती हैं।

दया करो माँ शक्ति दायिनी-
भव को सबल बनओ,
एक किरण दो विमल ज्ञान की-
जडता दूर भगाओ।

जड़-जीवन के अंधकार में-
जीवन भटक रहा है;
भैतिकता की चकाचौंध में;
कितना रक्त वहा है।

धमा-चौकडी मची जगत में-
छीना-झपटी चलती,
हाय-हाय में सकल जिन्दगी-
पारा बनकर बहती।

भव के दारूण व्यथा तिमिर को-
माता दूर भगा दो;
अन्तर दृष्टि खुले इस भव की-
निर्मल ज्योति जगा दो।

जय-जय माते विभव दायिनी-
अद्‌भुत महिमा तेरी;
आओ, विभा ज्ञान की लाओ-
करो न माता देरी।

टेर रहा जग चातक बनकर-
आओ, माता आओ;
शीतल कर दो अग-जग का मन-
स्वाति बूँद बरसाओ।

अष्टादश

जय हे माते ब्रह्माचारिणी-
वागीशा माँ शक्तिधारिणी।
  तेरा निर्मल रूप भुवन को-
  करता चेतन जड-जीवन को।
जहाँ कहीं भी जडता आती-
तू ही माता, इसे मिटाती।

तेरा सात्विक चेतनता-स्वर-
कर जाता है जीवन भास्वर।
संसय-भ्रम सब मिट जाते हैं-
श्रम-साफल्य स्वयं आते हैं।
तिमिर न मन में रह पाता है-
धुंध-धुआँ सब छट जाता है।

तीन गुणों पर आश्रित भव है-
सत-रज-तामस का उत्सव है;
इसी तंतु से जग निर्मित है-
इसी तत्व से सब सज्जित है।
इनका ही संतुलन सुहावन-
करता रहता जीवन भावन।

जहाँ तनिक संतुलन बिगडता-
आँखों में कंकड सा गडता,
उथल-पुथल सी मच जाती है-
मन को रह रह भरमाती है।
शन्ति न कुछ भी मिल पाती है-
मन में हल चल मच जाती है।

तुम ही माता इसे सजाती-
इस पर अंकुश तुम्ही लगाती;
व्यतिक्रम जहाँ दिखाई पडता-
अनमिल शब्द सुनाई पडता।
सजग तभी भक्तो को करतीं।
उनके मन में स्वयं उतरतीं।

तुम हो जिसमे सत्य सजग है-
एक डाल पर शान्त विहग है।
कहीं न कोई चंचलता है-
मन मे तनिक न विह्वलता है।
परम शान्ति मे लीन हृदय है-
जग का उसमें कहीं न भय है।

इससे भिन्न रजोगुण-आश्रित-
का है प्रतिपल अन्तर चिन्तित।
यहाँ सदा भौतिकता जग कर-
करती जीवन-जीना दूभर।
चंचल मति गति इसका सम्बल-
शान्ति नहीं है यहाँ किसी पल।

तामस-गुण तो बडा विकट है-
इससे बढता हर संकट है।
इसका जोर जहाँ बढता है-
नशा दानवी ही चढता है।
द्विविधा-संशय जगता प्रतिपल-
सत्य दृष्टि से रहता ओझल।

आज जहाँ भी रोदन-क्रन्दन-
क्षण क्षण दिखता है उत्पीडन।
हाहाकार मचा लगता है-
मन में ज्वाल-जलन जगता है।
प्रबल विषमता दिखती पग-पग
घायल लगता जीवन का खग।

यही खेल है जड-तामस का-
जीवन के उद्विग्न विरस का।
जहाँ दानवी लास प्रचुर है-
जगी जहाँ पर शक्ति असुर है।
वहाँ तमस-व्यापार निरंतर-
करता जीवन यापन दुर्द्धर।

माँ जगदम्बे कृपा दिखाती-
तभी शान्ति जीवन में आति
और नहीं तो अपने पन से-
मानव है परिछिन्न जलन से।
तमसावृति सताती, उसके-
अन्तर-तर के घर में घुस के;

कितना लोभी मानव-जी है-
इंद्री-द्वार झरोखा ही है।
विषय-बयार यहाँ पर आकर-
शुष्क बनाती जीवन-सागर।
मनुज यहां पर खो जाता है-
पुण्य समूचा धुल जाता है।

केवल सरस्वती ही आकर-
रक्षा करती इस अवसर पर।
और नहीं तो तम-ही-तम है;
तामस-संशय-जडता-भ्रम है।
जय हे माते दया दिखाओ;
सत्-चित आनन्द राह बताओ।

तभी सफल जन-जीवन होगा-
शमित-दमित सब क्रन्दन होगा।
सत्य हृदय में सहज जगेगा-
जीवन सात्विक स्वयं लगेगा।
जय-जय माते वाक-विधात्री-
ज्ञान-प्रदायी, करूणा-दात्री।

उनविंश

हंस-वाहिनी सरस्वती माँ,
कर दो निर्भय;
दीन-दुखी आहत-जीवन को-
दे दो आश्रय।

मानव कितना भू पर निर्बल-
प्रतिपल रोता;
उसके लिए भुवन में माते-
कब कुछ होता ?

कृपा तुम्हारी जब होती है-
नर जगता है,
अग-जग तक माँ, तेरी केवल-
यह विभुता है।

माते, विश्वामित्र जगे हैं-
तेरे होकर;
गुरु वशिष्ट भी जागे माता-
का पग धोकर।

माते जिस पर कृपा तुम्हारी-
सफल वहीं है;
सकल सिद्धि की अचल साधिका-
तुम्ही रही हैं।

मानस-पुत्र विधाता के भी-
करते वन्दन;
प्रतिदिन तेरा पूजन-अर्चन-
जय अभिनन्दन।

गुरू वशिष्ठ ब्रह्मर्षि हुए हैं-
तेरे होकर;
मॉ के चरण कमल में-
सर्वश खोकर।

जहॉ कहीं भी जो साधन है-
सब है तेरा;
कृपा-कटाक्ष तुम्हारा पाकर-
कटा अँधेरा।

तेरे साधन से जो गिरता-
मूढ बडा है;
उसके पथ पर दुर्दिन केवल-
रहा खडा है।

ऐसे ही वह नृपति त्रिशंकू-
लोभ-ग्रसित था;
प्रकृति नियम-विपरीत चला था ।
ज्ञान भ्रमित था।

चाह रहा था इसी देह से-
स्वर्ग पधारे;
धरती के सब नियम नियति को -
करे किनारे।

गुरू वशिष्ट ने मना किया था-
बात मान लो;
नियम धरा का भिन्न स्वर्ग से-
इसे जान लो।

सूक्ष्म देह से ही कोई भी-
जा सकता है;
जड शरीर को त्याग स्वर्ग को
पा सकता है।

विमल शारदे। बुद्धि तुम्हीं ने-
भ्रमित बनाई;
फल था भूपति के माथे पर-
सामत आई।

विश्वामित्र भ्रमित थे आए-
यज्ञ रचाने,
अपने तप से मूढ नृपति को-
स्वर्ग दिलाने।

हुआ यही, वह बीच अधर में-
लटका ऊपर,
मंद हुई थी कीर्ति समुज्ज्वल-
उसकी भू पर।

लज्जित विश्वामित्र हुए थे-
तेरे सम्मुख;
किया निवेदित तेरे आगे-
अपना सब दुख।

माते, पाकर कृपा तुम्हारी-
पुनः जगे थे,
तेरी कठिन तपस्या में ही-
स्वत· लगे थे।

तब जाकर उद्धार हुआ था-
सब कुछ पाए;
सफल मनोरथ होकर भू पर;
सुयश कमाएँ।

माते, तेरी महिमा अविचल-
सब बतलाते;
तापस-सिद्ध-सुयोगी जन नित-
कीर्त्तन गाते।

तेरी ही है सकल सिद्धियाँ-
पथ अनुगामी;
दया करो, सब कष्ट हरो माँ,
अन्तर्यामी।

आज पुन: तम घिरा गहन है-
होता क्रन्दन,
धरती के कण-कण पर माते-
है उत्पीडन।

शान्त करो यह भीषण ज्वाला-
जग हर्षाए,
ज्ञानमयी माँ विभा तुम्हारी-
फिर लहराए।

दया करो हे ज्ञान विधात्री-
कष्ट मिटाओ,
मानव-मन में पुण्य-ज्ञान का-
दीप जलाओ।

हरित-भरित फिर हो यह धरती-
मन मुस्काए;
पाप रहित जग तेरा निर्मल-
यश फैलाए ।

विशं

प्रज्ञा माँ तू वीणा पाणी–
हम हैं तेरे दास;
पुत्र प्यार का हमें बनालो–
विनती है सोल्लास।

जिस पर तेरी दृष्टि पडी वह-
है भू का अभिमान;
तेरी करुणा के कण पाकर-
बनते सभी महान।

वालमीकि औं व्यास भुवन के-
बने विमल श्रृंगार,
आज वही हैं इस धरती पर-
पुण्य-कर्म-आधार ।

वालमीकि का जीवन देखो-
करते थे उत्पात;
कृपा हुई तो धर्म कर्म में-
हुए यही निष्णात।

थे वनवासी कोल-भील से-
करते थे सब काम;
हर क्षण इनमें असुर वृत्ति ही-
रहती थी उद्दाम।

चोरी, हत्या और डकैती-
करते थे दिन-रात;
साधु-संत पर भी करते थे-
दुष्टों-सा आघात।

एक दिवस कुछ साधु-जनों की-
आई वहाँ जमात;
इन्हे बिठाकर की थी सब ने-
पूजन की कुछ बात।

साधु बोले-कर्म अपावन-
नरता का अपमान;
रोग- शोक में पडे मनुज का-
कौन करेगा त्राण।

लूट-पाट कर जो लाओगे-
खाएँगे सब लोग;
किन्तु तुम्हारे हृदय कलुष का-
मिट न सकेगा शोक।

मानव हो, तुम मानव जैसा-
कर्म करो अभिराम;
सोमवल्लरी कृपा करेंगी-
भजन करो अविराम।

वालमीकि लग गए भजन में-
लेकर माँ का नाम;
फिर तो उनके सद्-प्रयास के-
हुए सफल परिणाम।

माता की ही कृपा रही वे-
हुए भाव में लीन;
परमा दर्शित धर्म-सुयश में-
निर्मल-भाव-प्रवीण।

किया भुवन में पुनः प्रतिष्ठित
धर्म-नीति-उन्नीत;
रामायण सा आदिकाव्य भी-
इन से हआ प्रणीत।

वाक-विधात्री देवी की है-
महिमा अपरम्पार;
सभी देवता भी करते हैं-
इनकी जय-जयकार।

व्यास देव पर भी माता की-
करूणा रही अथोर;
स्वयं शारदा प्रतिक्षण रहती-
उनके चारों ओरे।

व्यास महर्षि को माता का-
ऐसा था प्रतिदान;
प्रतिपल उनके मन में विम्बित-
रहता भाव महान।

मंत्र–पूत वाणी थी उनकी–
भक्ति–भरित सदेश;
उन्हें देखकर चकित–थकित थे–
मन से स्वयं गणेश।

भाव विपुल अन्तर में भर कर–
विह्वल वेद व्यास ;
सोचा लिखित रूप में आए–
भारत का इतिहास।

सहसा गणपति बोले उनसे–
मॉ का विमल प्रसाद;
तुम्हे प्राप्त है करो न मन में–
भद्रे। कुछ अवसाद।

पाठ करो मै लिखता जाऊँ–
वाणी परम पुनीत;
यही बनेगा सकल सृष्टि का–
धर्म–शास्त्र अभिनीत।

किन्तु लेखनी मेरी अविरल–
चले सदा अविराम;
कभी न मिलने पाए इसको–
पल भर कहीं विराम।

कहा व्यास ने–समझ बूझकर–
गण्पति करें प्रयास;
जिससे पावन वचनामृत का–
होगा तनिक न ह्रास।

बैठ गए आसन पर ऋषिवर–
माँ को किया प्रणाम;
गणपति की फिर चली लेखनी
भूतल पर अविराम।

जय हे माते, विमल शारदे–
तेरी जय जयकार,
गूँज रही है आज भुवन मे–
बन कर मंत्रोच्चार।

एकविंश

परम शक्ति की ज्योति धरा पर-
फैल रही है अविरल;
सब उत्कर्ष-हर्ष का भू पर-
मात्र यही है सम्बल।

ब्रह्मा विष्णु महेश इसी के-
रहते प्रतिपल आश्रित;
परम शक्ति में तेज सभी का
रहता सदा समन्वित।

शक्ति-हीन शिव-शंकर तक भी-
भू पर केवल शव हैं,
बिना भाव की रचना जैसे-
प्राण हीन कलरव है।

सत्य यही, श्री-शक्ति नहीं तो-
कुछ भी शेष नहीं हैं,
भू के तीनों देव-विधाता-
विष्णु-महेश नहीं हैं।

शक्ति लक्ष्य है और इसी पर-
सबका ताना-बाना,
यह है पहला और आखिरी-
नर का ठौर ठिकाना।

इसी लिए सब साधन में है-
श्रेष्ठ शक्ति का साधन,
सर्व-दायिनी भू पर केवल-
माता का आराधन।

जैसे भी जो माँ को भजता-
सर्वशक्ति वह पाता,
महाविकट संकट के क्षण भी-
भक्त नहीं घबडाता।

माता अपना वरद-हस्त नित-
उसके सिर पर धरतीं;
महा काल के आघातों से-
उसकी रक्षा करतीं।

माता में विश्वास जगाना-
है सबसे आवश्यक ;
उसका पूजन-अर्चन ही है-
जीवन का उद्‌बोधक।

माता का विश्वास हृदय में-
जहाँ अटल हो जाता;
अपने सुख-दुख का फिर रक्षक-
स्वयं न वह रह पाता।

उसके कुशल-क्षेम का सारा-
भार वही ले लेती;
कदम-कदम पर सदा सहारा-
उसको माता देतीं।

आओ, माँ भव अन्तर-तर में-
दृढ विश्वास जगा दो;
भू के आकुल-व्याकुल जन को-
उसका लक्ष्य बतादो।

जब तक दृढ विश्वास न होगा-
होगी कुछ भी शान्ति नहीं;
तडप रही इस मानवता की-
मिट सकती है भ्रान्ति नही।

आओ, माता आओ मन में-
निर्मल ज्योति जगाओ;
जो भी दानव बना मनुज है-
मानव उसे बनाओ।

राह बताओ, मिटे अन्धेरा-
हम सुपंथ पर आएँ;
तेरे चरणों में ही रह कर-
नित सौभाग्य मनाएँ।

द्विविंश

माँ की पूजा यही कि अपने-
मन को निर्मल कर लें;
अपने मन में सात्विकता का-
शुभ प्रकाश हम भर लें।

जहाँ हृदय में तम रहता है-
सारे दुर्गुण आते;
उसी हृदय को सब विकार भी-
अपना दास बनाते।

दूषित मन से पुण्य कार्य तो-
नहीं किसी ने साधा;
ऐसा ही नर मरता-जीता-
रहता आधा-आधा।

शुभ विचार जगकर भी उसको-
जगा नहीं पाते हैं;
ऐसे नर के कदम कदम पर-
पर्वत ही आते हैं।

मन में धना अँधेरा भरते-
ही विवेक मर जाता;
ऐसे नर का असमय दुर्दिन-
सर्वनाश कर जाता।

किन्तु जहाँ पर सद्‌विचार का-
द्वार तनिक खुल जाता;
काल-रात्रि में भी उस नर तक
संकट कभी न आता।

इसीलिए तो आवश्यक है-
सदविचार अपनाएँ ,
माँ के पूजन-आराधन से-
शक्ति उसी की पाएँ।

वही शक्ति अज्ञान-तिमिर मे-
जगमग ज्ञान भरेगी;
वही शक्ति इस व्यथित भुवन को-
शान्ति प्रदान करेगी।

परम सधाना यही कि हम सब-
ज्ञान हृद्वय में लाएँ;
मातृ-शक्ति सम्पन्न विभा को
जीवन में अपनाएँ।

यही विभा है जिससे तम का-
लेश नहीं रह पाता;
अन्तर-बाहर की दुनिया में-
नव प्रकाश लहराता।

ज्ञानमयी माता ही केवल-
दे सकती यह सम्बल;
उसकी विभा-उदय होने पर-
खिलता मन का उत्पल।

माँ की कृपा जहाँ मिल जाती-
सभी साध्य हो जाता;
मन का सारा कल्मष मानव
अपने ही धुल जाता।

उसका कुछ भी शेष न रहता-
सब पावन हो जाता;
उसके आगे विस्तृत भूतल-
मन-भावन हो जाता।

सृष्टि सुहानी उसको दिखती-
मन में राग उतरता,
दृष्टि जहाँ भी जाती, अगजग-
में श्रृंगार उभरता।

उसके आगे कभी तिमिर का-
तिलभर शेष न रहता;
किसी तरह की ज्वाला में भी-
हृदय न उसका दहता।

दया करो माँ, मन में निर्मल-
जगमग ज्योति जगा दो,
भटक रहे जीवन को माता-
पथ पर तुरत लगा दो।

हम भिक्षुक है,हाथ पसारे-
अपनी कृपा दिखाओ;
बडी जलन से तडप रहे हैं-
शान्ति सुधा बरसाओ।

जय जगदम्बे विद्या-वारिधी-
ज्ञान-विधायी माता;
दया करो हे चिर कल्याणी-
सादर शीश नवाता।

त्रिविंश

कैसा गहन अँधेरा छाया-
क्षण क्षण लगता मन घबडाया।
मनुज धरा पर बडा दुखित है-
अपने-से ही पाप ग्रसित है।

क्या करना है नहीं जानता-
पापों को ही पुण्य मानता;
मन अकर्म में लगा हुआ है-
उसके चारों ओर धुँआ है।

सद्विवेक का हुआ लोप है-
पग-पग केवल घटाटोप है।
आँख मुँदी है, श्रवण मुँदे हैं-
काल-भाल के अंक गुँदे है।

तडप रहा, पर त्राण न मिलता-
जग में कुछ कल्याण न मिलता,
सघन निराशा जगह-जगह है-
जर्जर जीवन सभी तरह है।

आज व्यथित है कितना मानव-
जाग उठा है जी में दानव;
अन्त हुआ है सद्विचार का-
नर से नर के शुभ्र प्यार का।

स्नेह हृदय का क्षीण हुआ है-
सभी तरह नर दीन हुआ है;
आकृति शुष्क विषण्ण हुई है-
मानवता ही नग्न हुई है।

सृष्टि इसी से डरी-डरी है-
भीषण चीख पुकार भरी है;
कोई मन से शान्त न दिखता-
जाने भाग्य-विभव क्या लिखता ?

ऐसे में बस एक सहारा-
माँ ही का है स्नेह दुलारा;
जिस पर दया दिखाती माता-
उसका बिगडा सब बन जाता।

वही भुवन में यश पाता है-
दुनिया सुखद बना जाता है;
और नहीं तो सब है विह्वल-
अपने पन से आहत प्रतिपल।

मातृ-साधना बडी प्रबल है-
सकल सिद्धि का इसमें बल है,
इस पथ पर जो पाँव बढाता-
उन्नति-तुंग-शृंग चढ जाता।

उसको मिलती शक्ति अपरिमित-
ज्ञान-ध्यान और भक्ति असीमित;
उसको कुछ भी नहीं अगम है-
रहता वह सुख में हरदम है।

शक्ति मोक्ष तक ले जाती है-
नर को सब कुछ दे जाती है,
किन्तु कृपा जब करती माता-
तभी सहज यह सब हो पाता।

और नहीं तो मनुज सदा ही-
भटक रहा है पाप-लदा ही;
उसको भू पर त्राण कहाँ है-
उसका शीतल प्राण कहाँ है ?

जो भी धुआँ घिरा है काला-
वह सब तो है मिटने वाला;
किन्तु प्रयास करे नर मन से-
मत खिलवाड करे जीवन से।

जीवन दुर्लभतर है मानो-
सब रहस्य इसका तुम जानों;
तभी सुधार सकोगे इसको-
पहचानो इस सात्विक रस को।

माँ की पडती जिस पर छाया-
उसने सब कुछ स्वयं सजाया;
उसके आगे नव प्रकाश है-
भू के कण-कण पर सुहास है।

वहाँ नहीं उत्पीडन-क्रन्दन-
वहाँ न मन में सागर-मंथन;
वहाँ सहज यह भव होता है-
वहाँ न मन का खग रोता है।

जिसमें इसकी चाह प्रबल है-
सार्थक उसका ही हर पल है,
उसको ही पथ निर्मल मिलता-
उसके मन का शतदल खिलता।

दया करा माँ, एक किरण दो-
अपनी करुणा के कुछ कण दो।
तभी सफल जीवन खुल सकता-
कल्मष अन्तर का धुल सकता।

पग-पग गिरी दुर्ल्लंध्य अडा है-
महागर्त में मनुज गडा है;
इसे निकालो तिमिर-पक से-
माया के इस जटिल अंक से।

एक तुम्हीं हो जिस पर आशा-
कर सकता है मानव प्यासा,
और नहीं तो चैन नहीं है-
शान्ति सुलभ दिन-रैन नहीं है।

दया करो हे दयामयी तू-
धुँआ मिटा दो क्षमामयी तू;
तेरा वंदन-पूजन करता-
सादर माँ अभिनन्दन करता।

चतुर्विंश

प्रकृति मनुज की बडी गहन है-
 कोई जान न पाता;
कैसी कैसी परत पडी है
 नर पहचान न पाता।

सभी चाहते मधुमय सुखमय-
अपना जीवन काटें,
राग-रंग की टोली मे ही-
भावों का सुख बाँटे।

मन का कोई तार सलौना-
बजता रहे निरंतर,
तनिक न कोई कटुता आए-
जीवन के अभ्यन्तर।

मोद-मगन हो जीवन प्रतिक्षण-
फुलों-सा लहराता;
खिली चाँदनी मध्य मगन-मन
कोई रास रचाता।

कोई कोयल कूक रही हो-
अमराई में जैसे;
राग-रंग-उल्लास भरा हो-
जीवन में भी वैसे।

यही लालसा है अदभ्य जो-
सबको है भरमाती;
थाह लगाते, इस अथाह की-
सृष्टि डूबती जाती।

जिसका कोई अन्त नहीं,क्या
उसकी थाह लगाएँ ?
नहीं सोचते, मृग-तृष्णा में-
जीवन क्यों भटकाएँ?

काँटों के इस कुटिल कुञ्ज में-
मत जीवन उलझाओ,
अपनी आत्मा के पट पर मत-
ऐसे दाग लगाओ।

ये सब क्षणिक तनिक हैं, क्षण में
शबनम से ढल जाते;
सुरभि-दीप है गंध-रंध्र में-
बुझते आते-आते।

नेह लगाना है तो मन को-
चिर-चैतन्य बनाओ;
जहाँ रहे आनन्द सत्य-चित-
वैसा दृश्य सजाओ।

मन स्वच्छन्द निरंकुश इसको-
शुभ विवेक से बाँधो;
शाश्वत राग सनातन भू के-
प्राण प्राण में साधो।

दृष्टि हृदय की खुल जायेगी-
देख तभी पाओगे;
कौन रूप है सत्य ज्ञान का-
स्वयं समझ जाओगे।

जो कुछ हमें दिखाई पडता-
वही बाहरी अम्बर,
इसे मात्रा आवरण समझ लो-
तत्त्व छिपा है भीतर।

तात्विक दृष्टि हृदय के तल में-
जाकर जब टकराती।
सब रहस्य खुल जाता क्षण में-
सृष्टि मधुर बन जाती।

भेद न कुछ रह जाता सब में-
एक रूप जग जाता,
दृष्य और द्रष्टा का कोई-
भेद नहीं रह पाता।

लेकिन यह सब मातृ-कृपा बिन-
कभी न सम्भव होगा;
निरवलंब सायास यत्न से-
दुःख ही उद्‌व होगा।

दुखः जगत के सर्वनाश का-
एक मात्र है कारण;
मोह यही है, द्रोह यही है-
यही सृष्टि अवधारण।

निखिल सृष्टि का राग यही है-
एक यही आकर्षण;
इसी केन्द्र पर अवलम्बित है
भव का सारा दर्शन।

लक्ष्य यही है दृष्टि-दृष्टि का-
भेद सकल मिट जाए;
सत्य-तत्त्व का चिर-अविनश्वर-
रूप दृष्टि में आए।

रूप-रूप का भेद सृष्टि का-
वाह्याकार सही है;
किन्तु प्राण के तत्त्व-तत्त्व में-
एकाकार वही है।

यही देखना एक लक्ष्य है-
भव की चाह चिरंतन,
इसी लक्ष्य पर साधु-पुरुष का-
अर्पित सारा जीवन।

किन्तु कठिन है इसे साधना-
कैसे कोई झेले;
कोई पहुँच न पाया इस तक-
ऐसे कभी अकेले ।

माता की जब कृपा हुई तब-
बन्ध खुले सब नर के;
नष्ट हुए हैं तभी विघ्न के -
तत्त्व स्वतः ही डर के।

और नहीं तो मनुज वहाँ तक-
पहुँच नहीं ही पाया;
कदम-कदम पर माया ने ही -
उसको है भरमाया।

कृपा करो माँ किरण ज्ञान की-
फूटे माया भागे;
वाकमती की प्रभा समुज्जवल-
खिले नयन के आगे।

मन प्रसन्न उद्वेग-रहित हो-
खुले हृदय का शतदल;
ज्योति खिले उत्फुल्ल कि जैसे -
ऊषा में उदयाचल।

ज्योति लहर की जागे जिसमे-
प्राण-प्राण तक डूबे,
परम शान्ति हो व्याप्त चतुर्दिक-
हृदय न तिल भर ऊबे।

करुणा कर के दया करो अब-
अपना रूप दिखाओ,
भटक रहे हैं वत्स तुम्हारे-
अपना इन्हें बनाओ।

हम अबोध कुछ जान न पाते-
कौन राह अपनाएँ?
दृष्टि-हीन कुछ देख न पातें-
शान्ति कहाँ फिर पाएँ।

दया करो माँ एक सहारा-
तेरा है अवलम्ब,
पत्र-हीन हो रहा उखडकर-
मन का विटप-कदम्ब।

इसे बचाओ, आओ माता-
यह भी तेरी सृष्टि;
एक बार तो फेरो मुझ पर-
अपनी करुणा-दृष्टि।

जय हे माते वाक विधात्री-
अपना मुझे बनालो;
हूँ अबोध कुछ ज्ञान नहीं है-
अवगुण सकल भुला लो।

पंचविंश

गूँज रही है नयी प्रभा-सी-
कीर्त्ति-शारदे भक्ति विभा सी;
अगजग प्रतिपल गूँज रहा है-
भाव-भक्ति का स्त्रोत बहा है।

जहाँ कहीं भी शक्ति विहँसती-
उस छवि में माँ ही है बसती;
माँ का रूप सदा निर्मल है-
भक्त जनों का सात्विक बल है।

एक यही है जिस पर आश्रित-
भू का शुचि श्रृंगार सुसज्जित;
उसकी करूणा का कण पाकर-
सदा विहंसता सृष्टि-समुन्दर ।

शास्त्र-ज्ञान औं कर्म-काण्ड का-
भाव-भरित है सब ब्रह्माड का;
विद्या और पराविद्या का-
तत्त्व इसी में है आद्या का।

पूजन-अर्चन जप-तप वन्दन-
सभी शारदा के अभिनन्दन,
जहाँ-जहाँ भी ज्योति समुज्ज्वल-
भावों के जो खिलते उत्पल।

वहाँ-वहाँ पर माँ जगदम्बे।
कृपा वारि बरसाती अम्बे;
उससे कुछ भी नहीं अलग है;
उस पर ही अवलम्बित जग है।

शिव की शक्ति यही है माते-
और नहीं तो शव हो जाते;
जीवन का सब तत्त्व यही है,
परा ज्ञान का सत्व यही है।

जब भी भूतल पर घन छाया-
जब भी कोई संकट आया,
जागा जब भी दानव का बल-
मची धरा पर जब भी हलचल।

तब-तब माता तूने आकर-
रक्षा की धरती की सत्वर,
दिखती जो यह धरा सुहावन-
सभी तरह से जीवन-भावन।

वह प्रसाद है तेरा केवल-
सब है तेरी करुणा सबल,
शुम्भ-निशुम्भ यहाँ आए थे।
देवों के मन घबड़ाए थे।

तुमने ही संहार किया था।
दानव दल को मार दिया था।
महिषासुर-सा असुर भयंकर-
आया, करने भीषण संगर।

उसका भी जब अन्त हुआ था-
सुखमय सकल दिगन्त हुआ था।
तुमने ही सब खेल रचाया-
भव को रहने योग्य बनाया।

ब्रह्मा के मुख से हो निःसृत-
वेद ऋचाएँ भू पर झंकृत।
यह प्रसाद है तेरे बल का;
तेरे प्रज्ञा-रूप धवल का।

आदि काव्य की शुचि संरचना-
तेरा पावन अमृत-वचना ।
सब प्रसाद है अतुल विभव के-
जाग्रत जीवन के कलरव के।

शास्त्र-पुराण व्यास के सारे-
तुमने ही थे देवि सँवारे;
तेरी कृपा प्रबल है भू पर-
कण कण पर दिनकर सी भास्वर।

कृपा न तेरी होती माता-
करता फिर क्या विश्व-विद्याता?
धरती पर तम केवल रहता-
प्रतिपल मानव का मन दहता।

किन्तु अकारण देवि, अनुग्रह-
किया तुम्हीं ने भू पर साग्रह,
जिससे सजता है भू मण्डल-
ज्योतित रहता सदा खमण्डल।

आज पुन. यह कडी धडी है-
अतुल दानवी शक्ति खडी है,
इससे कुछ उद्धार न दिखता-
जय का कुछ उपचार न दिखता।

पग पग भ्रष्टाचार बढा है
नशा नाश का शीश चढा है,
द्वेष-घृणा विद्रोह-कलह का-
दुर्गुण जग में सभी तरह का।

फैल गया है इसे मिटाओ-
बुद्धि दायिनी माता आओ।
जग का उपवन उजड़ रहा है-
रक्त मनुज का बहुत बहा है।

मानव कितना आज मलिन है-
पल पल भीषण धन दुर्दिन है।
उसके मन का जगकर राक्षस-
बना गया है उसको परवश।

इसीलिए संहार मचा है-
मरना केवल शेष बचा है,
मन में सात्विक तत्त्व नहीं है-
दुनिया में अब सत्त्व नहीं है।

झूठ-दम्भ का लास जगा है-
आगे पीछे शत्रु लगा है;
उखड गया विश्वास हृदय का-
छिपा सूर्य है भाग्योदय का।

सूखी सरिता करूणा मन की-
भावुकता है घोर विजन की,
विश्व-मूल के पद-पादप के-
पत्र-पत्र तक झडे विटप के ।

आज मूंक है जगत्-नियन्ता-
शक्ति न जगती दानव-हन्ता।
चीख विश्व का आज धुआँ सा-
बना व्योम तक घना कुहासा।

इसको कौन शमित कर पाए-
कौन शक्ति की ज्योति जगाए।
किंकर्त्तव्य विमूढ धरा है-
मानव-मन में द्रोह भरा है।

दमित करो माँ ज्वाला दुष्कर-
तुम्हीं धरा पर हो अविनश्वर।
आओ माता, ज्योति जगाओ-
जन-मन का सब तिमिर हटाओ।

गूँजे घर-घर पूजन-अर्चन-
वागीशा का हो अभिनन्दन।
सोमवल्लरी आओ भू पर-
बरसे तेरी करूणा निर्झर।

दया करो माँ ज्ञान विद्यात्राी
तू ही जन-जन सुख की दात्री;
घिरा अँधेरा दर भगाओ-
ज्योति सत्य की पुन· जगाओ।

आओ माँ भूतल पर आओ-
नर को चिर-चैतन्य बनाओ।
जडता के सब बन्धन टूटे-
मोह-द्रोह संशय भय छूटे।

आओ माँ, नव राग सुना दो-
वेद-ऋचाओं को फिर गा दो।
तिमिर स्वतः सब कट जाएगा-
जन-जन का मन मुस्काएगा।।

समाप्त